मौलिकता की अकाल वेला

■ शंभु गुप्त

उच्च शिक्षा और शोध के क्षेत्र में आज नवजागरण की आवश्यकता है। खासकर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में। हिंदी साहित्य के अध्यापन और शोध की प्रवृत्ति और प्रविधि अधिकतर परंपरागत और प्रतिगामी रही है और है। विश्वविद्यालयों में हुआ अब तक का अधिकतर अध्यापन और अनुसंधान पुनरावृत्तिमूलक रहा है। उसमें मौलिकता, नवोन्मेष, रुचिरता आदि का अभाव रहा है। मौलिकता, नवोन्मेष और रुचिरता अधिकतर सृजनशील रचनाकारों की आलोचनात्मक गद्य-कृतियों में पाई जाती है। इसके अलावा सम्मेलनों, विचार-गोष्ठियों आदि में नवीनता दृष्टिगोचर होती है। साहित्यिक रचना और आलोचना की अद्यतन प्रवृत्तियां, विमर्श-संदर्भ, शैलियां और भाषा संरचनाएं इन्हीं आयोजनों में उभर कर सामने आती हैं। विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों से जुड़े जो अध्यापक इन सम्मेलनों, संगोष्ठियों और सेमिनारों में भाग लेते हैं वे अवश्य इस मौलिकता और नवीनता से परिचित हो जाते हैं। जो अपने अहंकार या उच्चता-ग्रंथि के चलते इनमें भागीदारी नहीं करते या जो इनमें जाने में हेठी समझते हैं या जिन्हें इनमें जाने में शर्म आती है, वे उसी परंपरावाद की कूपमंडूकता में फंसे रहते देखे जाते हैं।

इसलिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों में महत्त्वपूर्ण समकालीन रचनाकारों- चाहे वे लेखक हों या आलोचक- का निरंतर गहन संपर्क स्थापित करने का प्रयास हो।

हालांकि आज देखने में आता है कि विश्वविद्यालयों की ठस स्थितियों का संक्रमण अनेक रचनाकारों, आलोचकों तक पहुंच गया है। अधिकतर यह देखने में आता है कि साहित्य का अध्यापन एक 'साहित्यिक संरचना' (लिटरेरी कन्स्ट्रक्ट) के रूप में ही किया जाता है, जबकि साहित्यिक रचना- चाहे वह कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक या कोई और विधा हो- 'साहित्यिक संरचना' के साथ-साथ एक 'सामाजिक संरचना' भी होती है। यानी एक रचना अनिवार्यतः अपनी समसामयिक राजनीति, अर्थतंत्र, संस्कृति, सामाजिक उथल-पुथल आदि को अपने अंदर समो कर चलती है। ऐसी स्थिति में साहित्य का अध्यापन अंतरानुशासनीय प्रविधि से किया जाना ही उचित है। इससे साहित्य अध्यापन में व्यापकता और विविध-आयामिता का समावेश किया जा सकता है।

वर्तमान समय अंतरानुशासनीय विमर्शों और विचार-सरणियों का है। इक्कीसवीं शताब्दी ने अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में नई चुनौतियां प्रस्तुत की हैं। विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग इन चुनौतियों का सामना तभी कर सकेंगे जब वे एकायामी संकीर्णता से बहुआयामी व्यापकता की ओर प्रयाण करेंगे।

विश्वविद्यालयों के अधिकतर विभागों में अनुसंधान की भी लगभग वही स्थिति है, जो अध्यापन की है। हमारे अनुसंधान भी अधिकतर परंपरावादी और प्रतिगामी मनोवृत्तियों और प्रवृत्तियों से ग्रस्त हैं। शोध और अनुसंधान को स्तरीय, अधुनातन और मौलिक बनाने के लिए इन बातों पर प्राथमिकता से विचार किया और इन्हें अपनाया जाना चाहिए। सबसे पहले तो यह कि शोध और अनुसंधान के नए-नए विषय और संदर्भ ग्रहण किए जाएं। विषयों की पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति तुरंत और एकदम समाप्त की जाए। इसके लिए भारत के समस्त विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों के शोध-प्रबंधों और जिन विषयों पर शोधकार्य किया जा रहा है, उनकी एक समेकित निर्देशिका बनाई जाए। यह निर्देशिका यूजीसी की एक समिति की देख-रेख में किसी केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा तैयार की जा सकती है। दूसरे यह कि साहित्यिक शोध और अनुसंधान अनिवार्य रूप से अंतरानुशासनीयता को अपनाएं। साहित्य अपने आप में एक अंतरानुशासनिक

शिक्षा

इक्कीसवीं शताब्दी ने अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में नई चुनौतियां प्रस्तुत की हैं। विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग इन चुनौतियों का सामना तभी कर सकेंगे जब वे एकायामी संकीर्णता से बहुआयामी व्यापकता की ओर प्रयाण करेंगे।

अवयवों से भरी संरचना होती है। उसमें इतिहास, राजनीति, संस्कृति, भूगोल, समाजशास्त्र आदि अनुशासनों के अनेकानेक तत्त्व अंतर्निहित होते हैं। इस स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक है कि साहित्यिक शोध और अनुसंधान में सृजनात्मक लेखकों, समाजविज्ञान, राजनीतिविज्ञान, अर्थशास्त्र, नृतत्त्वशास्त्र आदि क्षेत्रों के महत्त्वपूर्ण विद्वानों और विषय-विशेषज्ञों का सहयोग और परामर्श अधिकाधिक सुनिश्चित किया जाए।

शोध-प्रक्रिया का एक आवश्यक हिस्सा होता है, लिटरेचर रिव्यू। अफसोस की बात है कि हमारे यहां इस पर सही-सही और पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। शोधार्थी को यह पता ही नहीं होता कि जिस विषय और क्षेत्र में शोध करने की वह सोच रहा है, उसमें ताजातरीन काम क्या हुए हैं। साहित्य में रचना और आलोचना दोनों स्तरों पर हमेशा काम जारी रहता है। हिंदी के शोधार्थी को यह पता नहीं होता कि जिस समस्या को लेकर वह शोधरत है या होना चाहता है, उसमें कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण उपन्यास, कहानियां, कविताएं, आलोचनात्मक, विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक लेख आदि इधर आए हैं। उस विषय पर मौजूदा बहस क्या चल रही है और उसके प्रमुख मुद्दे क्या हैं, इसकी जानकारी उसे नहीं होती। वह वेद से चीजों को शुरू करता है और छायावाद पर लाकर छोड़ देता है। कुल मिलाकर एक वैचारिक घटाटोप की गिरफ्त में पूरी शोधावधि में वह रहता है और इसी स्थिति में वैतरणी पार कर बैकुंठ पहुंच जाता है। यह कहना अशोभनीय लग सकता है, लेकिन यह एक कड़वी सच्चाई है कि जिस बैकुंठ में वह पहुंचता है, वह कहीं वह कुआं तो नहीं, जिसमें एक-दूसरे से ठेलमठेल करते दो लोग स्वभावतः जा पड़े हों! जैसा कि कबीर कह गए हैं-'जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया दोन्यू कूप पड़ंत।'

मौलिकता भी शोध में इसी रास्ते आती है। आजकल एक तरह से कट-पेस्ट का जमाना है। वहां से लो, यहां चेप दो। शोध तो शोध, आजकल किताबें तक इसी तकनीक से लिखी जा रही हैं। नेट से, गूगल से और दूसरे स्रोतों से सामग्री चुराई और चुपके से अपना बना कर उसे किताब में ढाल दिया। शोधार्थी ही नहीं, अनेक अध्यापक तक ऐसा करते पकड़े गए हैं। इनमें से कुछ को ही अभी तक ठिकाने लगाया जा सका है। बहुत-से अब भी छुट्टा घूम रहे हैं।

मौलिकता का संबंध वैचारिकता या अंतर्दृष्टि से भी है। आपकी अंतर्दृष्टि ही तय करती है कि आप कुल मिलाकर कितने मौलिक हो सकते हैं। मौलिकता का संबंध विषय-वस्तु से भी होता ही है, लेकिन मूलतः वह वैचारिकता या दृष्टि से जुड़ा मसला है। कई बार ऐसा होता है कि विषय-वस्तु बहुत पिष्टपेषित किस्म की होती है, पर यह हमारी दृष्टि ही है जो उसे एक टटकापन दे देती है। जैसे इतिहास की पुनर्व्याख्या की जाती है या अतीत का पुनरवलोकन होता है; तो ऐसा तभी संभव है, जब हमारे पास एक सर्वथा नई दृष्टि हो। साहित्य का पुनर्मूल्यांकन दरअसल अंतर्दृष्टि की मौलिकता और नवीनता के तहत ही किया जा सकता है।

अंतर्दृष्टि की मौलिकता ऊपर वाले की देन नहीं, बल्कि यह जीवनसंघर्ष और व्यक्तिगत ईमानदार आचरण से आती है। मुक्तिबोध कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी की बात जोर देकर यों ही नहीं करते थे! लेकिन इन दिनों अगर किसी चीज का सबसे ज्यादा अकाल पड़ा है तो वह है, व्यक्तिगत ईमानदारी। कहने का यह अर्थ कतई नहीं कि लोग ईमानदार नहीं हैं। सिर्फ इतना कहना है कि हम इसके प्रति गंभीर नहीं हैं। 'सब चलता है' अब भी हमारा नीतिनिर्देशक सिद्धांत है।

अपडेट नॉलेज शोध-प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा है। स्थानीय से लेकर विश्व तक कहां क्या चल रहा है, इसकी जानकारी जितनी आज सुलभ है, उतनी पहले कभी नहीं थी। आज के इंटरनेट, सूचनाक्रांति, सोशल मीडिया के फैलाव के समय में भी अगर कोई ज्ञान के मामले में अपडेट नहीं है तो इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा। लेकिन केवल ज्ञान से कुछ नहीं होगा। ज्ञान के साथ वैचारिकता और संघर्षशीलता भी निहायत जरूरी है। दुनिया भर के मौलिकतम शोधों ने इस तथ्य को प्रमाणित किया है कि एक श्रेष्ठ शोधकार्य वह है, जो आपको आंदोलन की दहलीज तक ले आए। जो यथास्थिति में परिवर्तन के लिए आपको उकसाना शुरू कर दे। शोध अगर यहां तक आपको लेकर आता है, तो वह उसकी चरम उपलब्धि मानी जा सकती है। हम देखें कि क्या हमारे शोधप्रबंध हमें यहां तक पहुंचा रहे हैं?